UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180969

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 81.6 | D58B Accession No G.H.C. 87

Author "दिनकर" रामधारी सिंह

Title आपु - | १९५१

This book should be returned on or before the date last marked below.

बापू

श्री रामधारी सिंह "दिनकर"

उदयाचल
पटना

मूल्य १)

प्रकाशक :—
उदयाचल, पटना

(सर्वाधिकार लेखक के अधीन)

प्रथम संस्करण, एप्रिल १९४७

मुद्रक :—श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', अशोक प्रेस, पटना।

दो शब्द

बापू के इर्द-गिर्द कल्पना बहुत दिनों से मँडरा रही थी। कई बार छिट-पुट स्पर्श भी हो गया, किन्तु तूलिका कुछ ज्यादा कर पाने में असमर्थ रही। तसवीर तो अधूरी अब भी है, किन्तु, इस बार जो कुछ बन पड़ा उसे पुस्तकाकार में प्रकाशित कर देना ही अच्छा जान पड़ा। अपनी असमर्थता का रोना रोते हुए कब तक निश्चेष्ट रहा जाय?

कविता का एकाध अंश ऐसा है जिसे स्वयं बापू, शायद, पसन्द नहीं करें। किन्तु, उनका एकमात्र वही रूप तो सत्य नहीं है जिसे वे स्वयं मानते हों। हमारे जातीय जीवन के प्रसंग में वे जिस स्थान पर खड़े हैं वह भी तो भुलाया नहीं जा सकता।

यह छोटी-सी पुस्तक विराट के चरणों में एक वामन का दिया हुआ क्षुद्र उपहार है। साहित्य-कला से परे इसका एकमात्र महत्त्व भी इतना ही है। आशा है, बापू के दर्शक, प्रशंसक और भक्त इस तुकबन्दी में अपने हृदय के भावों का कुछ प्रतिविम्ब अवश्य पायेंगे। इति।

विनीत :—
दिनकर

बापू

१

संसार पूजता जिन्हें तिलक,
रोली, फूलों के हारों से,
मैं उन्हें पूजता आया हूँ
बापू ! अब तक अंगारों से ।

अंगार, विभूषण यह उनका
विद्युत पी कर जो आते हैं,
ऊँघती शिखाओं की लौ में
चेतना नई भर जाते हैं।

उनका किरीट, जो कुहा-भङ्ग
करते प्रचण्ड हुंकारों से,
रौशनी छिटकती है जग में
जिनके शोणित की धारों से।

जीतते वह्नि के वारों को
जो तेजस्वी बन वह्नि प्रखर,
सहते ही नहीं, दिया करते
विष का प्रचण्ड विष से उत्तर।

अंगार हार उनका, जिनकी
सुन हाँक समय रुक जाता है,
आदेश जिधर का देते हैं,
इतिहास उधर झुक जाता है।

आते जो युग युग में मिट्टी—
का चमत्कार दिखलाने को,
ठोकने पीठ भूमण्डल की
नभ-मंडल से टकराने को।

अंगार हार उनका, जिनके
आते ही कह उठता अम्बर,
"हम स्ववश नहीं तब तक जब तक
धरती पर जीवित है यह नर।"

अंगार हार उनका कि मृत्यु भी
जिनकी आग उगलती है,
सदियों तक जिनकी सही
हवा के वक्षस्थल पर जलती है।

पर, तू इन सब से परे; देख
तुझको अंगार लजाते हैं,
मेरे उद्वेलित-उबलित गीत
सामने नहीं हो पाते हैं।

२

बापू ! तू वह कुछ नहीं, जिसे
ज्वालाएँ घेरे चलती हैं,
बापू ! तू वह कुछ नहीं,
दिशाएँ जिसको देख दहलती हैं।

तू सहज शान्ति का दूत, मनुज–
के सहज प्रेम का अधिकारी,
दृग में उँड़ेल कर सहज शील
देखती तुझे दुनिया सारी ।

धरती की छाती से अजस्र,
चिर-संचित क्षीर उमड़ता है,
आँखों में भर कर सुधा तुझे
यह अम्बर देखा करता है ।

कोई न भीत ; कोई न त्रस्त;
सब ओर प्रकृति है प्रेम-भरी,
निश्चिन्त जुगाली करती है
छाया में पास खड़ी बकरी ।

३

भू पर तो आते वे भी जो
जीता या हारा करते हैं,
मिट्टी में छिपे अनल को अपनी
ओर पुकारा करते हैं ।

जीते लपटों के बीच मचा
धरणी पर भीषण कोलाहल,
जाते-जाते दे जाते हैं
भावी युग को निज तेज अनल।

पर, तू इन सब से भिन्न ज्योति;
जेताजेता से महीयान,
कूटस्थ पुरुष! तेरा आसन
सब से ऊँचा, सब से महान।

क्या हार-जीत खोजे कोई
उस अद्भुत पुरुष अहन्ता की,
हो जिसकी संगर-भूमि बिछी
गोदी में जगन्नियन्ता की!

संगर की अद्भुत भूमि, जहाँ
पड़नेवाला प्रत्येक कदम—
है विजय; पराजय भी जिसकी
होती न प्रार्थनाओं से कम।

संगर की अद्भुत भूमि, नहीं
कुछ दाह, न कोई कोलाहल;
चल रहा समर सबसे महान,
पर, कहीं नहीं कुछ भी हलचल।

४

देवों को जिसपर गर्व, योग्य
उस शुचिता के वसुधा भी है,
नर में हैं जहाँ विकार अमित,
अन्तर्हित कहीं सुधा भी है।

सब ने देखे विद्वेष-गरल,
तू ने देखा अमृतप्रवाह,
सब ने बड़वानल लिया, लिया
तू ने करुणा-सागर अथाह ।

नर के भीतर की दुनिया में
है कहीं अवस्थित देवालय,
सदियों में कभी-कभी कोई
मरमी पाता जिसका परिचय।

देवालय सुना नहीं, देवता हैं,
लेकिन, कुछ डरे हुए;
दानव के गर्जन-तर्जन से
कुछ भीति-भाव में भरे हुए।

मानवता का मरमी सुजान!
आया तू भीति भगाने को,
अपदस्थ देवता को नर में
फिर से अभिषिक्त कराने को।

तू चला, लोग कुछ चौंक पड़े,
'तूफान उठा या आँधी है?'
ईसा की बोली रूह, 'अरे!
यह तो बेचारा गाँधी है।

दुनिया ने चाहा प्रश्न करे,
क्या कहिये इस दीवाने को?
दो बूँद सुधा लेकर निकला
है जग की आग बुझाने को।

पर, तू न रुका ; सीधे अपने
निर्दिष्ट पन्थ पर जा निकला,
पद-चिह्नों को देखते हुए
पीछे - पीछे इतिहास चला ।

५

इतिहास चला, पर, नहीं मुग्ध
हो कर ज्वलन्त भाषाओं से,
वह चला स्वयं प्रेरित होकर
अपनी अस्फुट आशाओं से।

मानवता का इतिहास, युद्ध के
दावानल से जला हुआ,
मानवता का इतिहास, मनुज
की प्रखर बुद्धि से छला हुआ।

मानवता का इतिहास, मनुज
की मेधा से घबराता सा,
मानवता का इतिहास, ज्ञान
पर विस्मय चिह्न बनाता सा,

मानवता का इतिहास, निराशा
से टकरा कर फिरा हुआ;
मानवता का इतिहास, आपदाओं
में आ कर घिरा हुआ।

मानवता का इतिहास विकल,
हाँफता हुआ, लोहू-लुहान;
दौड़ा तुझ से माँगता हुआ
बापू! दुःखों से सपदि त्राण।

६

पर, त्राण कहाँ ? किस्मत के लाखों
भोग अभी तक बाकी हैं,
धरती के तन में एक नहीं,
सौ रोग अभी तक बाकी हैं।

जल रही आग दुर्गन्ध लिये,
छा रहा चतुर्दिक विकट धूम,
विष के मतवाले कुटिल नाग
निर्भय फण जोड़े रहे घूम।

द्वेषों का भीषण तिमिर-व्यूह,
पग-पग प्रहरी हैं अविश्वास,
है चमू सजी दानवता की,
खिलखिला रहा है सर्वनाश।

पर, हो अधीर मत मानवते!
पर, हो अधीर मत मेरे मन!
है जूझ रही इस व्यूह-बीच
धरती की कोमल एक किरण।

अब प्रश्न नहीं, यह एक किरण
किस तरह द्वन्द्व से छूटेगी,
है प्रश्न, व्यूह पर इसी तरह
बाकी किरणें कब टूटेंगी।

बापू ने राह बना डाली,
चलना चाहे, संसार चले,
डगमग होते हों पाँव अगर
तो पकड़ प्रेम का तार चले।

७

दानवता से मैं भी अधीर,
नर पर मेरा भी सहज प्यार,
मैं भी चाहता पकड़ पाऊँ
इस अमिट प्रेम का क्षीण तार।

पर, हाय, प्रणय के तार ! छोर
बस एक हमारे कर में है ;
क्या अन्य छोर भी इसी तरह
आबद्ध अपर अन्तर में है ?

उत्तर दे सकता कौन ? शान्त,
मेरे शंकाकुल कुटिल हृदय !
जब तक शंकाएँ शेष, नहीं
दर्शन दे सकता तुझे प्रणय।

चाहता प्रेम-रस पाना तो
हिम्मत कर, बढ़ कर बलि हो जा,
मत सोच, मिलेगा क्या पीछे,
पहले तो आप स्वयं खो जा।

है प्रेम-लोक का नियम, सहन कर
जो बीते, कुछ बोल नहीं ;
हैं पाँव खड्ग की धारा पर,
चल बँधी चाल में, डोल नहीं।

८

ली जाँच प्रेम ने बहुत, मगर,
बापू तू सदा खरा उतरा,
शूली पर से भी बार-बार
तू नूतन ज्योति-भरा उतरा।

प्रेमी की यह पहचान, परुषता
को न जीभ पर लाते हैं,
दुनिया देती है जहर, किन्तु,
वे सुधा छिड़कते जाते हैं।

जानें, कितने अभिशाप मिले,
कितना है पीना पड़ा गरल,
तब भी नयनों में ज्योति हरी,
तब भी मुख पर मुस्कान सरल।

सामान्य मृत्तिका के पुतले,
हम समझ नहीं कुछ पाते हैं,
तू दो लेता किस भाँति पाप
जो हम दिन-रात कमाते हैं?

कितना विभेद ! हम भी मनुष्य,
पर, तुच्छ स्वहित में सदा लीन,
पल-पल चंचल, व्याकुल, विपण्ण,
लोहू के तापों के अधीन।

पर, तू तापों से परे, कामना-जयी,
एकरस, निर्विकार,
पृथ्वी को शीतल करता है
छाया-द्रुम सी बाँहें पसार।

६

इतिहास आँकता है गाथा,
था भरत-भूमि का एक भाग,
संयोग, अकारण वहाँ कभी
फुङ्कार उठे विकराल नाग।

विष की ज्वाला से दह्यमान
हो उठा व्यग्र सारा खगोल,
मतवाले नाग अशंक चले
खोले जिह्वाएँ लोल-लोल।

हंसों के नीड़ लगे जलने,
हंसों की गिरने लगी लाश,
नर नहीं, नारियों से होली
खेलने लगा खुल सर्वनाश।

कामार्त्त दानवों के नीचे
जगदम्बा काँप उठीं थर-थर,
पर, साथ आज ही खड्ग नहीं,
पर, साथ आज ही नहीं जहर।

लपटों से लज्जा ढँको, कहा हो ?
धधको, धधको घोर अनल !
कब तक ढँक पायेंगे इसको
रमणी के दो छोटे करतल ?

नारी का शील गिरा खण्डित,
कौमार्य गिरा लोहू लुहान ;
भगवान भानु जल उठे क्रुद्ध,
चिंगधार उठा यह आसमान ।

पर, हिली नहीं कुरु की परिषद,
पर, हिले नहीं पाण्डव सभीत,
ललकार कौंध कर चली गई
रह गये सोचते धर्म नीति ।

बापू ! तू काल का कृष्ण,
विकल आया आँखों में नीर लिये,
थी लाज द्रौपदी की जाती,
केशव-सा दौड़ा चीर लिये।

दानव की आँखों में अशंक
अपनी आँखें डालते हुए,
कुछ घृणा-कलह से नहीं,
प्रेम से ही उसको सालते हुए,

बापू आगे जा रहे, जहर की
बाढ़ निगलती जाती है;
सहमी सहमी-सी अनी तिमिर की
पीछे हटती जाती है।

११

वह सुनो, सत्य चिल्लाता है,
ले मेरा नाम अँधेरे में,
करुणा पुकारती है मुझको
आबद्ध घृणा के घेरे में।

श्रद्धा, मैत्री, विश्वास, प्रेम,
वन्दी हैं मेरे सभी लोग,
धिक्कार मुझे जो सहूँ किसी—
के भय से मैं इनका वियोग।

देवता चाहते हैं जाऊँ,
मैं सत्वर उन्हें बचाने को,
या कारागृह में कूद स्वयं
बंधने को या जल जाने को।

मत साथ लगे कोई मेरे,
एकाकी आज चलूँगा मैं,
जो आग उन्हें है भून रही
उसमें जा स्वयं जलूँगा मैं।

एकाकी, हाँ एकाकी हूँ,
डँसना चाहे तो व्याल डँसे,
करुणा को जिसने ग्रसा,
बढ़े आगे, मुझको वह काल ग्रसे।

मैत्री, विश्वास, अहिंसा को
जिस महादनुज ने खाया है,
है कहाँ छिपा? ले ले, भोजन
फिर वैसा ही कुछ आया है।

बामी से कढ़ बाहर आवे,
वह दनुज मुझे भी खाने को,
मैं हो आया तैयार, प्रेम का
अन्तिम मोल चुकाने को।

भर गया पेट इतने से ही ?
मुझको खाने की चाह नहीं ?
पर, याद रहे, मैं सहज छोड़ —
देनेवाला हूँ राह नहीं ।

बामी-बामी पर घूम-घूम
मैं तबतक अलख जगाऊँगा,
जबतक न हृदय की सीता को
तुमसे वापस फिर पाऊँगा ।

या दे दूँगा मैं प्राण;
खमंडल में हो चाहे जो उपाधि,
मानवता की जो वज्र वही
गाँधी की भी होगी समाधि ।

१२

पाताल, तलातल, अतल, वितल
को फोड़ महीतल पर सरसो,
अयि सुधे! गगन से धार बाँध
धरती पर द्रुत बरसो, बरसो।

हो रहा बड़ा अतिकाल, मही को
भरो, भरो रस-धारा से,
अपनी लहरों पर लो उछाल
बापू को विष की कारा से।

यह नहीं प्रतिज्ञा बापू की,
विपदा है गहन-गभीर खड़ी,
बन हठी जहर की कीचड़ में
धरती की है तकदीर खड़ी।

बापू जो हारे, हारेगा
जगतीतल का सौभाग्य-क्षेम,
बापू जो हारे, हारेंगे
श्रद्धा, मैत्री, विश्वास, प्रेम।

श्रद्धा, विश्वास, क्षमा, ममता,
सत्यता, स्नेह, करुणा अथोर,
सबको सहेज कर बापू ने
सागर में दी है नाव छोड़।

भँवरों में यों मत नचा इसे,
मत इसे तरंगों पर उछाल;
चिर-सहज क्षुब्धता को समेट
शीतल हो जा अम्बुधि विशाल।

देवों की भी है साँस रुकी,
सागर! सागर! हो सावधान!
है लदी हुई इस नौका पर
मानवता की पूँजी महान,

यह डूब गई तो डूबेंगे
मानवता के सारे सिंगार,
यह पार लगी तो धरती की
घायल किस्मत भी लगी पार।

अन्धड़ के झोंके नाच रहे,
है नाच रहा विप्लव कराल,
बाँसो उठ-उठ फण पटक रहा
सागर का यह विक्षुब्ध व्याल।

नाविक दृग मूँदे, हाथ जोड़
जा बैठा लोक अपर में है,
भगवान ! सँभालो, नौका की
पतवार तुम्हारे कर में है।

१३

बापू ! मैं तेरा समयुगीन ;
है बात बड़ी, पर, कहने दे ;
लघुता को भूल तनिक गरिमा
के महासिन्धु में बहने दे।

यह छोटी-सी भंगुर उमंग,
पर, कितना अच्छा नाता है,
लगता है पवन वही मुझको
जो छू कर तुझको आता है।

सच है कि समय के स्मृति-पट पर
रवि सा होगा तू भासमान,
हम चमक चमक बुझ जायेंगे
क्षीणायु, क्षणिक उडु के समान।

पर, कहीं राम-सा साथ-साथ
तेरे पीछे चल पड़ा देश,
बापू ! मैं तेरा समयुगीन
होकर हूँगा उपकृत विशेष।

१४

तू कालोदधि का महास्तंभ,
आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू! तू मर्त्य-अमर्त्य,
स्वर्ग-पृथ्वी, भू-नभ का महासेतु।

तेरा विराट यह रूप कल्पना—
पट पर नहीं समाता है,
जितना कुछ कहूँ, मगर, कहने
को शेष बहुत रह जाता है।

लज्जित मेरे अंगार; तिलक-
माला भी यदि ले आऊँ मैं,
किस भाँति उठूँ इतना ऊपर?
मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं?

ग्रीवा तक हाथ न जा सकते,
उँगलियाँ न छू सकतीं ललाट,
वामन की पूजा किस प्रकार
पहुँचे तुझ तक मानव विराट?

फरवरी]
१९४७]

—०—

दिनकर-कृत अन्य पुस्तकें

कुरुक्षेत्र

युद्ध के विषय पर चिन्तनपूर्ण, ज्वलन्त काव्य।

मूल्य ३॥)

कुछ सम्मतियाँ :—

हिन्दी में इस ढंग की कोई दूसरी पुस्तक है कि नहीं, नहीं कह सकता।

—माननीय श्री सपूर्णानन्दजी

मेरी सम्मति में कुरुक्षेत्र नये युग की नई गीता है।

—भदन्त आनन्द कौशल्यायन

कुरुक्षेत्र मैंने दो बार पढ़ा। वह इतना रोचक है कि उसे हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। कुरुक्षेत्र की विचारधारा भ मुझे पसन्द है।

—श्री सुमित्रानन्दन पन्त

दिनकर ने मैथिलीशरण के आदर्श को, प्रसाद के सपनों में, तुलसीदास की सरलता से लिखा है।

—पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी

जिस जातिमें कुरुक्षेत्र-जैसे काव्य की रचना होती है उसका निकट का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल समझना चाहिए।

—पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर

मिट्टी की ओर

(आलोचना) मूल्य ३॥)

दो सम्मतियाँ

हिन्दी आलोचना की कोई पुस्तक मैंने रात भर जग कर यदि पढ़ी है तो स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की। यह दूसरी पुस्तक है जिसे मैं निशीथ में निरन्तर पढ़ता ही रहा।

—प्रोफेसर विश्वनाथ मिश्रजी, काशी

'मिट्टी की ओर' में संगृहीत निबन्धों में ठेस पाण्डित्य तो है ही, साथ ही उनकी शैली में कवि-सुलभ स्निग्धता और कोमलता भी है।

—श्रीयुत रायकृष्णदासजी, काशी

धूप-छाँह

बालक और वयस्क, सभी लोगों के योग्य सोलह आनन्ददायिनी हलकी-फुलकी कविताओं का अनुपम संग्रह। चित्रित आवरण, सुन्दर छपाई, सजिल्द

मूल्य १।)

सामधेनी

दिनकरजी की हाल की राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह। हुंकार की तरह ही इस पुस्तक की भी लूट मची हुई है। आज ही अपनी कापी खरीद लीजिये।

मूल्य २)

हुंकार

तृतीय संस्करण ; डिमाई साइज ; सजिल्द ; पुस्तक साहित्य-जगत में काफी प्रसिद्ध है। अधिक परिचय की आवश्यकता नहीं।

मूल्य २॥)

रसवन्ती

तृतीय संस्करण : डिमाइ साइज ; सजिल्द ; रसवन्ती जब पहले-पहल निकली थी तब उसकी गिनती हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ सौ पुस्तकों में की गई थी ।

मूल्य २॥)

द्वन्द्वगीत

हिन्दी की कुछ अनुपम रुबाइयों का संकलन ।

मूल्य ।!)

रेणुका

तृतीय संस्करण : कवि की सर्वप्रथम कृति ;

मूल्य ३)

मिलने का पता

उदयाचल, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता,
पटना